लौहित्य साहित्य सेतु: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित द्विभाषिक ई-पत्रिका
वर्ष: 3, संख्या: 4; जनवरी-जून, 2022

आक्षेप

✍ मैत्रेयी पुष्पा

जब रुकमपुर के लिए मुझे तबादले का ऑर्डर मिला तो मैं बौखला-सा गया था। उस गाँव का नाम सुनते ही बरसों से समेटा मन का साहस और उत्साह डोलने लगा था। धूल-धूसरित रास्ता और चार मील कच्चे की चलाई। कहाँ अभी जहाँ रहता था, ठीक सड़क के किनारे था मेरा बैठक, जीप सीधी आकर दरवाजे पर खड़ी हो जाती थी, बस...सौ गज की दूरी पर ही रुकती थी। इस गाँव में मैंने बड़ा मन लगाकर काम किया था, शायद इसी का इनाम दे दिया मुझे।

"मिस्टर विशालनाथ, यू आर ट्रांसफर्ड टू दैट लोनली विलेज। यू सी डेवलपमेंट इस मस्ट फॉर ऑल विलेजेज।" अंग्रेजी के इस वाक्य के समक्ष मैं कुछ भी नहीं बोल पाया था। हाथ में वह ट्रांसफर ऑर्डर पसीजता रहा और "यस सर" कहकर मैं बाहर निकल आया था। जैसे ही अपने बॉस मिस्टर बर्नाड के कमरे में घुसा, मेरा चेहरा देखते ही ऊपर कहा वाक्य उन्होंने मेरी ओर यूँ उछाल दिया कि मेरी जुबान कुछ कहने को उठ ही नहीं पाई।

पिता जी की बात बार-बार याद आ रही थी- "विशाल, अरे यार, यहीं कहीं नौकरी खोज लो, कहाँ-कहाँ भटकते फिरोगे!"

लेकिन गाँव की सेवा करने और वहाँ जीवन बिताने का जुनून मेरे सिर पर इस कदर सवार था कि उनकी बातें मुझे बिलकुल थोथी लगी थीं। मैंने उन्हें यूँ ही हवा में उड़ा दिया। ग्रामीण मिट्टी के आकर्षण की अपेक्षा मुझे शहरी सुख-सुविधाएँ नगण्य लगी थीं, सो चल दिया गाँव की ओर।

मेरा युवा मन एक पल को निराश होकर फिर उत्साहित हो उठा था। एक चुनौती समझकर रुकमपुर जाने का इरादा कर लिया था- कुछ नहीं तो साइकिल तो कहीं गई ही नहीं, वह तो कच्ची पगडंडी पर भी चली जाएगी।

वही हुआ। ऑफिस में ही खड़े ग्राम-प्रधान मिल गए थे। मेरे साथी ने मेरा परिचय उनसे करा दिया था। और उन्हीं के साथ साइकिल लेकर मैं उस ओर निकल पड़ा।

जलपान के पश्चात् वे ही मुझे अपने साथ गाँव की परिक्रमा-सी करा रहे थे और

उसी बीच कई कमरे दिखाते जा रहे थे । वे बैठकनुमा कमरे थे अर्थात् हर घर के मेहमानखाने, जो कुछ ही घरों के बाहर बने थे-

"कौनऊ कमरा चुन लो बाबू जी, जौन अच्छौ लगे उतई रहबे कौ परबंध हो जैहे और खावे-पीवे की कौनऊ चिंता न करियो आप ।"

"ये आप लोगों के उठने-बैठने के कमरे हैं, मैं जिस किसी का भी कमरा लूँगा उसे असुविधा तो होगी।"

"कैसी बात करते हौ बाबू जी, आप अपनौ घर-बार छोड़ के हमारे भरोसे तो आए हौ । जे तो हमारो फरज है।

भोले-भाले ग्रामीणों की ये ही बातें तो मुझे चुंबकीय शक्ति से गाँवों की ओर खींचती रही हैं । शहरी सभ्यता के दासत्व में हम क्या अपना ड्राइंगरूम किसी को रहने के लिए दे सकते हैं? यदि दस मिनट भी कोई आगंतुक अधिक बैठ जाए तो हम घड़ी देखकर अपना समय नष्ट होने का आभास उसे कराने में नहीं चूकते । कैसी असुविधा की दुविधा में पड़े हम उसके जाने की प्रतीक्षा करते हैं ।

मैंने जिस कमरे को चुना था, वह घर रमिया का था । रमिया के घर की बैठक ही मेरे रहने का स्थान बनी ।

"ठीक है बाबू जी, खान-पियन की परेसानी नहीं हुइए । वा रमिया है न, आपको खाना बना देउ करहै ।"

"मैं स्वयं खाना बना लूँगा, आप लोगों को परेशान थोड़े ही करने आया हूँ ।"

"कैसी बात करत हौ बाबू जी, अरे परेसानी काये बात की?" कहकर प्रधान जी मुझे आश्वस्त करने लगे ।

मैंने रमिया को अभी तक नहीं देखा था। बहुत थक चुका था । कपड़े के जूते का रंग धूल के रंग का हो गया था । बीच में साइकिल से उतरकर पैदल भी चलना पड़ा था । खैर, फिर भी पहले सामान खोलकर मैंने करीने से लगा दिया- बैठक की दो किवाड़दार आलमारियों में। सोचा कि अब नहा लूँ । नहाने की इच्छा जाहिर की तो प्रधान जी ने दोनों साधन मेरे सामने रख दिए-

"कुआं ऊ घर के द्वार पे है बाबू जी, जगत पानी खेंच दैहे और घर के भीतर बर्मा हू लगौ है । सहर के मानस तौ भीतर घुस के ही नहात हैं ।" कहकर प्रधान जी मुस्कराने लगे ।

मैं बाहर नहाने की सोच भी नहीं सकता था । अब तक जहाँ रहता था, वह सरकारी बिल्डिंग थी । मेरे कमरे से लगा ही गुसलखाना भी था । मैं घर के अंदर ही नल पर चला गया । आँगन में नल था, उसके चारों ओर की जमीन पक्की थी- सीमेंट लगी-बिलकुल चिकनी । जगत ने दो बाल्टी पानी निकाला और बाहर हो लिया । धूल-पसीने से लथपथ मैं शरीर पर पानी डालकर साबुन लगा रहा था,

आँखें साबुन के फेन के कारण बंद कर रखी थीं- तभी कानों में हँसी की ध्वनि गूँजने लगी, जैसे किसी ने अनगिनत काँच की चूड़ियाँ पक्की जमीन पर बिखेर दी हों। मैंने साबुन लगे मुँह से ही आँखें खोल दीं- देखा, सामने एक अति रूपवती नारी खड़ी है। झट से आँखें बंद कर लीं मैंने, क्योंकि साबुन चिनमिनाने लगा था।

"जे बाबू जी तो घर में जनी की तरह नहा रये... अ२...ह२...अ२...ह२..." कहकर वह हँसे जा रही थी। मैं सकुचाकर आधा हो गया। 'कैसे कपड़े बदलूँगा, जाने अभी तक गई कि नहीं?' जल्दी से मैंने मुँह पर पानी डाला, लेकिन यह देखकर सुकून मिला कि वह जा चुकी थी। बैठक में घुसा तो वह चाय लिए खड़ी थी, पीतल के पिचके गिलास में ऊपर तक भर के। शायद हाथ जल रहा होगा, इसलिए कपड़े के चीकट काले टुकड़े से पकड़े थी-

"बाबू जी चाय!" कपड़े समेत ही मुझे जल्दी से गिलास पकड़ा दिया।

इतने में प्रधान जी भी आए गए। शायद चबूतरे पर बैठे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे कि मैं कब नहाकर निकलूँ।

"जा रमिया है...बाबू जी, कौनऊ परेसानी नहीं हौन दैहें आप कों, ऐन समझदार है।"

मैंने इधर-उधर देखा, वह जा चुकी थी, लेकिन जितना भी मैं उसे देख सका, उसका रूप अवश्य मुझे चकित करके धर गया। इतनी रूपवती नारी- इस गाँव में!

"काय बाबू जी, सादी भई कि नईं?" प्रधान जी पूछ रहे थे।

"नहीं, अभी अकेला ही हूँ। घर में माँ-बाप हैं।" मैंने उनके अगले संभावित प्रश्न का भी उत्तर दे दिया।

"बाबू जी, एक बात बताए देत हैं हम आपकों, जरा रमिया से नेंक सावधान रहियो।"

"ऐसा क्यों?" मैंने सोचा, खतरनाक औरत होगी।

"बाबू जी घबड़ावे की कौनऊ बात नइयां। वैसें तो सब तरह से भली है, पर निछुद्दर है ससुरी। अब सरम खोल के का कहें आपसे-इतै-उतै मुँह मारत फिरत है।"

मैं उनका इशारा समझकर सकते में आ गया- 'कैसा गलत घर चुन लिया मैंने? कैसे रहूँगा?'

शाम घिर आई थी, मैं सोकर उठा तो कुछ ताजगी-सी महसूस कर रहा था। गाँव में सबसे परिचय करने चल दिया। इस गाँव का ग्राम-सेवक था मैं- खाद, बीज के विषय में बातें की लोगों से। साक्षरता-अभियान कैसे आरंभ किया जाए, सलाह-मशविरा किया नवयुवकों से। बैंक से ऋण मिलने में क्या परेशानियाँ होती हैं, उन्हें हल करने का आश्वासन देकर

अपने कमरे पर लौट आया। पौर में घुसते ही आँगन में बने चूल्हे के पास बैठी वह साफ दिखाई दे रही थी। लालटेन की मद्धिम रोशनी में उसके मुख की रंगत नारंगी हो उठी थी। वह मुँह नीचे झुकाए कटोरदान में रोटियाँ गिनने में तल्लीन थी। तब करीब सत्ताईस-अट्ठाईस साल की रही होगी वह, मेरे अंदाज से।

मेरी आहट पाते ही खाना परोसकर कमरे में ले आई। मैं जूते खोल रहा था। झुके-झुके ही कह दिया, "मेज पर रख दो।"

वह खाना रखकर तुरंत अंदर चली गई। मैं नल पर हाथ धोने गया तो वह नल चलाने आ गई। उसका निच्छल, निष्कलंक मुख कैसी अपूर्व गरिमा से दीप्त था! फिर क्यों ग्राम प्रधान ने उसके लिए ऐसा कहा था? क्यों परिचय के समय, यह सुनकर कि मैं रमिया के घर जा रहा हूँ, कुछ लड़के आपस में अभद्र इशारे करके हँस पड़े थे? बड़ी उलझन में पड़ा खाना खाता रहा। सोचा जगह बदलने को कहता हूँ तो यह निर्दोष क्या सोचेगी, जो इतनी तन्मयता से मेरी सेवा में लगी है? थोड़ी देर में एक आठ-दस बरस की बच्ची दुबारा रोटी पूछने आ गई- पता चला कि रमिया की बहन थी, साथ ही रहती थी, नाम था- द्रौपदी। रमिया के यहाँ बच्चा तो कोई दिखा नहीं। उसके यहाँ कभी बच्चे का जन्म हुआ कि नहीं, यह भी मैंने नहीं पूछा।

एक दिन जब मैं शहर से लौटा तो रमिया घर में नहीं थी। द्रौपदी ने मुझे खाना परोसा। अपनी बहन की तरह ही बड़े जतन से एक-एक चीज के लिए पूछती जाती और लाती जाती। मैंने उसी से पूछा "तुम्हारी दीदी कहाँ है?"

"आपको नहीं मिली बाबू जी! सहर ही तो गई है यसोधन मास्टर के संगै।"

मेरा संशय अंकुआया-सा हो उठा- कहीं तो आग होगी ही, नहीं तो धुआँ कैसे उठेगा? खैर, मैंने सोच लिया-मुझे क्या पड़ी जो उसके बारे में सोचूँ? ज्यादा से ज्यादा डेरा बदल लूँगा। जब वह लौटकर आई तो मैंने कुछ नहीं पूछा। वही बताती रही-

"आज हम मास्टर के संगै चले गए थे सहर, का करते बिमार हते सो हमें संगै ले गए। हमाई जानकारी है न डाकदर से।"

मैंने सोचा लिया, बहाना गढ़ लिया है तो गढ़े, मैंने कौन-सी सफाई माँगी थी इससे। मैं इस गाँव के लिए जी-तोड़ मेहनत कर रहा था- सारे-सारे दिन किसानों के साथ खेतों का निरीक्षण करता घूमता- कहीं फसल में कीड़ा तो नहीं लगा? खाद समय पर डाली है कि नहीं? एक-एक किसान से पूछता। ऋण दिलवाने के लिए भाग-दौड़ करता। उसकी परेशानियाँ

सरकार तक पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करता तथा तरीके से खेती करने के आयाम उनके सामने खोलकर रखता और उस पगडंडी पर अंगुली पकड़कर उन्हें चलाने की कोशिश करता। फिर भी अक्सर उन्हीं में से कोई न कोई मुझे अपने निंदित, उच्छृंखल दृष्टि फेंकते दिख जाता तो अंदर से मेरा मन कैसा कसैला हो जाता था। फिर सोचता, क्यों रहता हूँ मैं इस बदनाम औरत के घर? छोड़ क्यों नहीं देता यह जगह? पर रमिया की आकृति देखते ही वह सब भूल जाता कि पीछे कैसी विकट स्थिति झेली है मैंने। दूध धुला-सा निश्छल भाव समेटे उसका चेहरा मेरी राह रोककर खड़ा हो जाता, कैसे जाऊँ ...कहीं और?

कुछ भी सुनकर यहीं रुकने का दृढ़ निश्चय कर चुका था, लेकिन उस रात की घटना ने मुझे फिर झकझोर दिया। वह रात भर नहीं आई। मैंने अपने कमरे का, उसके घर में खुलने वाला द्वार अकसर बंद रखता था, लेकिन फिर भी किसी तरह की आहट होती तो मुझ तक आ ही जाती थी। रात भर मुझे नींद नहीं आ सकी। रमिया सुबह लौटी, तब मुझे झपकी लग चुकी थी लेकिन- 'बाबू जी, चाय'। उसके शब्दों से ही मेरी आँख खुल गई- देखा कि खिड़की से धूप मेरे कमरे में प्रवेश कर गई है। मैं उससे बेहद नाराज था, फिर भी अनचाही दृष्टि उसकी ओर उठ ही गई। गहरी खरोंचों के अनगिनत निशान थे उसके मुख पर, बाँहों पर, पाँवों पर, जिधर नजर जाती उधर ही- देखकर मैं घबरा उठा।

"यह क्या हुआ? चोट कैसे लगी है? इतनी कि..."

"का बताएँ बाबू जी, जा गाँव के बदमास लरकन की करतूत है जा।" वह बहुत ही उदास थी।

"क्या कह रही हो? रात भर नहीं लौटीं तुम। तुम्हारी बहन भी द्वार का ताला लगाकर न जाने कहाँ चली गई। मैं अकेला तुम्हारा घर रखाता रहा।" मैं बहुत क्रोधित था।

"अरे, जा घर में का धरौ बाबू जी, जो रखवारी करने परै।"

"सच-सच बताओ, रात में कहाँ थीं? अब मैं एक पल भी तुम्हारे यहाँ नहीं ठहरना चाहता। जाने किस बुरी घड़ी में यहाँ आ गया था।"

"ना...ऐसौ न करियो बाबू जी! आपसे बड़ौ सहारो है हमें, आपको देखकें हिम्मत बाँधें हैं हम।"

"बोलो, कहाँ थीं?" मैं चाबुक-सा प्रश्न बरसाता रहा, वह कुछ नहीं बोली, चुप ही रही। मेरा गुस्सा और बढ़ गया-

"फिर गाँव वाले ठीक ही कहते हैं । रमिया, तुम्हारे लक्षण ही ऐसे हैं फिर बदनामी क्यों नहीं होगी।"

"आप तौ न बोलौ बाबू जी ऐसें, अबै बतायें देत-नंबरदार के घर हते हम ।"

मैं समझ गया, यह इस तरह की गड़बड़ रोज करती होगी ।

"किसने बुलाया था तुम्हें वहाँ? क्या कर रही थी उनके घर?"

"काऊ ने नईं, हम तौ खुद ई गए ते । कित्ते बिमार हैं वे । बेचारे अकेले हैं, कोऊ पानी दैवे बारौ नईंया । भट्टिन बुखार में तप रये ते । का करते बाबू जी हम? रात भर पानी की पट्टी माथे पै धरत रहे, गोड़े दाबत रहे । काढ़ौ बनाकें पिवाउत रहे । पर का करें जा गाँव की गुंडागर्दी को...छत्त पै चढ़ के पत्थर बरसाए हैं, सीटी मारी हैं बाबू जी ! बा तौ नंबरदार पै बरसत पत्थर हमहि झेलत रये नहिं तौ बड़ी चोट आऊटी उन्हें । का-का गलीच नहीं बकौ बाबू जी हमाये लाने...।" कहकर वह हिचकी बाँधकर रोने लगी ।

मैं पसीज उठा था, फिर भी उसकी मूर्खता पर खीज थी मुझे- "तुम्हें क्या पड़ी थी जो तुम दौड़ी गई उनके यहाँ?"

"का करते हम? वे अकेले हैं, मर जान देते उनें? अरे, अपने जमाने में बड़ी अच्छे-अच्छे काम करे हैं उनन्ने । हमाये ससुर बताउत हते कै नंबरदार गरीबन कों करेजा से लगा कें रक्खत हते । भीड़ लगी रहत हती उनके द्वारें । आज निबल हो गए तो कोऊ पास नहिं फटकत उनके ।"

"घर में और कोई नहीं है क्या?"

"हैं काये नहिं, सब कोऊ हैं, चारि-चारि लरका हैं, पर का करें, सबके सब अपनी-अपनी दुलहिन लैके नौकरी पै निकरि गए । इनहूँ कों बहौत बुलाउत हैं, पर जे देहरी की मोह-ममता तौ नहिं छोड़ि पाऊत । हमसे जितनी चाकरी बन जात है, कर देत हैं । कोऊ कछु कहै हमें नहिं फरक परत बाबू जी!" वह एक पल में ही हलका करके सब कुछ भूल गई थी ।

इस घटना के विषय में तो पूरी तरह समझा दिया मुझे । मैं भी उसकी हर बात से सहमत हो गया । नंबरदार के यहाँ वह चाहे जब रुक जाती । वे वृद्ध तो थे, लेकिन कद-काठी लंबी, सीधी चाल को देखकर ऐसे वृद्ध नहीं दिखते कि कोई गलत दिशा में सोच ही न पाए।

एक दिन फिर गाँव में कानाफूसी होने लगी । सुना कि आज शेरखां के साथ चली गई-हाट-बाजार करने । गाँव का नामी गुंडा, छंटा बदमाश माना जाता था वह । लेकिन रमिया ने न जाने क्या सोचकर उसके साथ हो ली? मैं

गली से जा रहा था कि तीर-सा वाक्य मेरी ओर किसी मसखरे ने उछाल दिया-

"काय बाबू जी, संभार नहिं पाये सो फिर रही है घाट-घाट ।" इस दोहरे प्रहार को सुनकर मैं तिलमिला उठा । वहीं से आगे जाने की बजाय घर की ओर उलटा लौट लिया और अपना सामान बाँध लिया । इससे अधिक सहने की शक्ति मुझमें नहीं थी । सोचा, आज आ जाए रमिया, फौरन प्रधान जी के कमरे में चला जाऊँगा । सारी झंझट खत्म हो जायेगी ।

वह रात गए लौटी । मैं तो उसकी प्रतीक्षा करके थक रहा था । घर में घुसी ही थी कि मैंने पुकार लिया- "रमिया, पहले इधर आओ । मैं जा रहा हूँ ।"

"कितै बाबू जी?"

"कहीं भी, जहाँ चाहूँगा व... ट ...वहाँ। तुम तो इस गाँव में बदनाम हो ही, मुझे भी अपने साथ घसीट रही हो । रोज कहीं न कहीं गायब हो जाती हो । मैं देख नहीं रहा क्या? तुम अच्छी औरत नहीं हो रमिया! पर मुझे क्या लेना-देना तुमसे ।"

"बाबू जी, अपनी ही कहत जैहौ, कछु हमाई न सुनिहौ ।"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं सुनूँगा, गढ़ दो कोई कहानी ।" मैंने वितृष्णा से कहा ।

"बाबू जी, कौनऊ कहानी नइयां, सब सच्ची बात है, बिलकुल सच्ची । हम का मानत नइयां कै सरेखां गुंडा-बदमास है, पर देखौ तौ बाबू जी, बाकी जोरू अबै एक महिना पहलें गुजर गई- दो छोटे बच्चा छोड़िकें । एक तौ दूध पियत बच्ची है । बाबू जी, व अकेलौ अपने बच्चा नहिं पाल पा रहो, मजूरी करै कै बच्चन लै कें बैठौ रहै, सो बाबू जी, सेरा दुखी हुइकैं मोंडी कों सहर के कंजरन देन जारओ हतो । बहुत रोरओ हतो बाबू जी! हम तौ बई ऐ रोकत-रोकत रस्ता भर समझाउत चले गये- कै हम पाल देहैं तेरे बच्चा सेरा, आज से इनकी मां हम हैं रे...हम हैं, मान तौ सही । बड़ी मुस्किल से लौट ले आये बाय।"

मैंने देखा, द्रौपदी की गोद में छोटी बच्ची थी और रमिया की उँगली पकड़े करीब तीन साल का बालक टुकुर-टुकुर कभी मुझे देख रहा था, कभी रमिया को । उसके बाद रमिया का आना-जाना शेरा के घर भी हो गया रात-बिरात । मैं नहीं कह सकता कि शेरा अपने बच्चे की धाय बनी इस स्त्री से कैसे पेश आता होगा? लेकिन शेरा के जीवन के वे कठिन क्षण जरूर बाँट लिए थे रमिया ने ।

एक दिन यों ही पूछ लिया मैंने- "रमिया, तुम अपने पति के साथ चली क्यों नहीं जातीं? यहाँ सौ बवंडर खड़े करती रहती हो।"

"कैसी बातें करत हौ बाबू जी, ससुर की देहरी छोड़कें चले जाएँ? वे हमाये धरमपिता कित्ते प्यार से ब्याह कें ले आए ते हमें। उनईं कौ घर बीरान कर जाएँ?"

"फिर तबादला भी तो हो सकता है रामेश्वर का। प्राइमरी स्कूल तो यहाँ भी है।" मैंने दूसरी युक्ति सुझाई।

"कैसें करा लें तबादलौ, आप ही बताऔ। वौ है सीधौ-साधौ मिट्टी कौ माधौ। न जानें कैसें मास्टरी करत है। हमने ही प्रधान जी से बात करी थी, सो कहत हते- पाँच हजार लगि हैं। बाबू जी, इत्तौ ही होतौ तौ चंपाराम और कुंदनियाँ भूखे न मर रये होते।"

एक और पहेली बिखेरकर बैठ गई रमिया।

"ये चंपाराम-कुंदनियाँ कौन हैं?" मैं पूछ रहा था।

"चंपाराम पंडित हैं बाबू जी! उनकौ ब्याह ई नहि भओ सो बाल-बच्चे नइयां। कुंदनियां बुआ उनही की बाल-विधवा बहन हैं। विधवा भई तौ भाई की रोटी बनाउन इहां चली आईं, फिर आज तक सासरे ई नहीं गईं। इनके भतीजन ने सब जमीन अपने नांव करा लई बाबू जी! जब तक जमीन नांव नई करी हती सो अपने संग रखत हते। जायदात लैबे पीछें को पूछत बुढ़ापे में? अब कोउ रोटी नहिं दै सकत उन्हें। जो कछु हमसे बन परत है, कर देत हैं बाबू जी! आपसे पहले बेई तो सोऊत हते हमाये बैठका में- हम अकेले हते न बाबू जी...।"

सुनकर मैंने सोचा, यह औरत दुनियादारी से कतई अनभिज्ञ है। सबका ठेका क्या इसी ने ले रखा है? आज के जमाने में हम इसे क्या कहेंगे- 'मूर्ख'- और क्या?

"गाँव वाले तुम्हारे विषय में जो कहते हैं, उसका पता तो है न तुम्हें?" मैंने गहरी निगाह उसके चेहरे पर गड़ा दी।

"पतौ काहे नइयां। चरित्तर खराब समझत हैं, जई न?" वह निरीह भाव से बोल गई।

किन्हीं दिनों लछमीनरायन रमिया के सौंदर्य के दास हुए उसकी गली के अनगिनत चक्कर लगाया करते थे, लेकिन यह अनुपम सुंदरी उन्हें फटकार बैठी। खिसियाकर लछमीनरायन सबसे कहते फिरे थे- "मरद तौ घर पै रहत नइयां, सो हमें बुलाउतीं, हमऔ का कसूर? दुनियां के आगें आँखें दिखाऊत हैं।"

लेकिन जब उनके छप्पर में आग लगी तो यह मूर्ख औरत सबसे पहले बाल्टी भर-भर आग बुझाने में लगी थी। आग की लपटों में अंदर घिरे लछमीनरायन को बाहर निकालने

की हिम्मत कोई नहीं कर पा रहा था । जान सबको प्यारी थी । रमिया ही आग में झुलसती उन तक पहुँच गई और बाहर खींच लाई । सभी ने यही कहा था- "पुराना याराना था, बचाती कैसे नहीं ।"

यह वाक्य अंदर तक मेरा मन छीलता चला गया था । लगा, मैं यहाँ क्यों आया? ग्रामीण भोले-भाव, जिन्हें मैं कलेजे से लगाए था, आहत हो-होकर गिरते जा रहे थे । शहर और गाँव में अब अंतर रह ही कहाँ गया है! एक-सी मानसिकता व्याप्त है हर जगह । शहर में मोह-ममता खोजे नहीं मिलते और गाँव के इस मोह को क्या नाम दें, जो सीधे सोच ही नहीं सकता । बड़ी वितृष्णा भर गई मेरे मन में। जहर की कड़वाहट कैसी होती है, मैंने अपने हलक के थूक से महसूस कर ली थी । हारकर उसी को फटकारने लगा- "खबरदार, जो अब कहीं गईं । सुनती ही नहीं तुम । अब एक पल भी नहीं ठहरूँगा तुम्हारे घर ।"

"नहीं बाबू जी, आप न जइयो । धन भाग हमारे जो आप आए । हमारी रातें सुरच्छित हो गईं बाबू जी- अब द्वार की सांकल रात गए कोऊ नहिं बजाउत, खुसर-पुसर कोऊ अबाज नहिं देत । बाबू जी, आपके पाँव पड़त हैं...।" कहकर मेरे पाँव पकड़ लिए । अंदर की करुणा आँखों से बहने लगी । मेरी आँखें नम हो आईं ।

"अब कितहूं नहिं जैहै बाबू जी, हम बिलकुल कितहूं नहिं ।" उसने प्रतिज्ञा ली ।

लेकिन देखता कि नंबरदार के घर, शेरा के घर, चंपाराम के पास, लछमीनरायन के जले जख्मों की खबर लेने वह किसी पल चली जाती और तुरंत लौट आती । मैं मन मसोसकर रह जाता- 'यह नहीं मानेगी।'

एक दिन नंबरदार के घर देर लग गई । घर में घुसते ही मैंने प्रश्न किया- "कहाँ गई थीं? मानती नहीं हो तुम और मेरा पीछा भी नहीं छोड़तीं ।"

"बाबू, जानें चाहो तो बेसक चले जाओ। हम तौ आपकों बदनामी ही दै सकत । पर बाबू जी, जामें हमाओ दोस नइयां, सब हमारी मां कौ दोस है । बई ने हमाये मन में परमारथ कूट-कूट कें भर दऔ और बइ अपसरा-सी सुगढ़ मां कौ रूप दै दऔ हमें राम जी नें । का करें जे दो खोट जुर गए बाबू जी, नहिं तौ का ऐसौ होतौ? अब नहिं जैहें काऊ के घरै, चायें कोई जरै चायें मरै ।"

मैं देखता रहता, अब वह कहीं नहीं जाती थी । अनमनी-सी अपने घर की झाड़ू-बुहारी में लगी रहती, खाना बनाती रहती और शेरा के बच्चों को अपने ही यहाँ पालती रहती । अफवाहें बंद-सी हो गई थीं । मैं भी शांत मन अपना काम करता था ।

घर से माँ की बीमारी का पत्र आया। मुझे तुरंत ही जाना पड़ा। पिता जी काम से बाहर गए थे, इसलिए मैं जल्दी लौट भी नहीं सका। माँ की हालत दिन पर दिन खराब होती जा रही थी। मैं इलाज के लिए भाग-दौड़ कर रहा था और पिता जी के आने का एक-एक क्षण इंतजार कर रहा था। लेकिन जो नहीं होना चाहिए था, वही हो गया। माँ चल बसीं, पिता जी नहीं आ पाए। मैं खूब रोया था। चाहे रहता कहीं था, माँ की परछाईं का आभास मुझे सदैव अपने साथ बना रहता। इस सदमे को बर्दाश्त करते हुए मुझे रमिया कई बार बहुत याद आई थी। वह कैसे सारी विषम परिस्थितियों की मार सह लेती है!

पिता जी ने यह नौकरी छोड़ देने को कहा था। बहुत रोका था मुझे, लेकिन मैं फिर उसी गाँव के रास्ते पर चल दिया। रमिया के विषय में सोच रहा था कि वही मेरी टूटी हिम्मत बँधाएगी। घर मिलेगी तो कैसे आँसुओं का बाँध रोक पाऊँगा। गाँव का सीवान पास आता जा रहा था। रेतीले रास्ते पर साइकिल की चेन उतर गई। उसी को चढ़ा रहा था कि मेरी निगाह कहीं दूर जाकर टिक गई...देखा, कोई औरत चली आ रही है। साइकिल की चेन चढ़ा चुका तो आगे बढ़ा। मेरे और उसके बीच का फासला सिमटने लगा। स्त्री के कंधे पर एक बच्चा बैठा था। निगाह पैनी करके देखा तो लगा जैसे रमिया हो...पास आती गई...हाँ, वही तो थी।

रमिया के कंधे पर उन्हीं ठाकुर साहब का बेटा बैठा था जो उसकी बदनामी की कहानियाँ गढ़ने में महारत हासिल कर चुके थे। वह तेज चाल से चलते हुए मेरे करीब आ गई।

"अरे बाबू जीई २२ ...! सब ठीक तौ है...बौहत दिन लगा देय!" उसकी चहकती आवाज शिकायत में बदल गई।

"रमिया...बस...ऐसा ही कुछ हो गया था।" कहकर मेरा गला भर आया।

"अरे, ऐसौ का भऔ...बाबू जी २२...?"

कुछ रुककर बोली- "बाबू जी, जे मुन्ना बिमार है- जाके इंतान के परचा हैं। और जाके पिता बाहर गाँव गए हैं। बेचारी माँ हती अकेली...बौऊ बुखार में परी घबड़ाय रही। सो बाबू जी, हम जाय कंधा पै लऐं चले आए। परचा छूट जातौ तौ साल बरबाद हुई जातौ...हम अबै आए लौटि कें...।" कहकर वह तेज कदमों से चली गई।

संपर्क-सूत्र:

वरिष्ठ हिंदी कथाकार